निर्वासित

–सूर्यबाला

लेखक–परिचय

हिन्दी कहानी की सशक्त हस्ताक्षर सूर्यबाला का जन्म 25 अक्टूबर 1943 को उत्तरप्रदेश के बनारस में हुआ था। इनके आज तक 150 से ज्यादा उपन्यास–कहानियाँ और व्यंग्य आदि प्रकाशित हो चुके हैं। सृजन की श्रृंखला का प्रथम पुष्प "मेरे सन्धि पत्र (उपन्यास) सन्1975 ई. में प्रकाशित हुआ, जो साहित्य के सुधि पाठकों में काफी चर्चित रहा।

साहित्यिक रचना संसार का सुपरिचित नाम है सूर्यबाला, इनकी अधिसंख्य कृतियाँ कोमल एवं नाजुक अनुभूतियों को निगलने वाली क्रूर व्यावसायिकता पर चिंता प्रकट करती है। जीवन की विविध परिस्थितियों को परखने की कथा लेखिका के पास गाँधीवादी दृष्टि है। समाजगत सकारात्मक परिवर्तन तथा जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता हेतु विरोध और विद्रोह के स्थान पर विवेक को महत्त्व देती है। लेखिका के मतानुसार तेजी से बदल रहे समय में नारी अस्मिता एक चुनौती भरा सवाल है, लेकिन उससे भी बडी चुनौती यह है कि हम विश्व को बचा ले जायें। प्रकृति और परम्पराओं से मिले मूल्यों को अगर हमने खारिज कर दिया तो हम खुद ही खोखले हो जायेंगे।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी संग्रहः– कात्यायनी संवाद, मुंडेर पर, एक इन्द्रधनुष, दिशाहीन, साँझवाती, गृह प्रवेश, थाली भर चाँद, मानुष गंध।

उपन्यासः– सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, यामिनीकथा, दीक्षान्त

व्यंग्यः– धृतराष्ट्र टाइम्स, झगड़ा निपटारक दफ्तर, अजगर करे ना चाकरी

धारावाहिकः– पलाश के फूल, न किन्नी ना, सौदागर दुआओं के, एक इन्द्रधनुष, जुबैदा के नाम, निर्वासित, रेस।

सम्मान और पुरस्कारः– साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट लेखन के लिये कथाकार सूर्यबाला को कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैः–

घनश्याम दास पुरस्कार, सराफ पुरस्कार, प्रियदर्शिनी पुरस्कार तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मुम्बई विद्यापीठ आरोही, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा, सतपुड़ा संस्कृति परिषद् आदि कई संस्थाओं से सम्मानित।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत कहानी 'निर्वासित' वानप्रस्थी जीवन जी रहे अपने घर को त्याग बड़े बेटे के घर पर रहने वाले दम्पत्ति की दर्द भरी कहानी है। स्वयं की स्वतंत्रता को अनिच्छापूर्वक छोड़ अपने पुत्र और पुत्रवधु की

इच्छा, भावना, रूचि एवं विचारों के अनुसार स्वयं को ढालना कितना दमघोंटू और पीडादायक होता है, एक–दूसरे के पूरक पति–पत्नी जिनका जीवन और जीवन के सुख–दुःख भी सांझा थे, दोनों को अलग कर दोनों बेटों के बीच बाँटा जाना बाण–बिद्ध क्रौंच–युगल की मौन–मूक पीड़ा की मर्मान्तक अभिव्यक्ति था। आधुनिकता बोध को जीते बेटों के मध्य वृद्ध दम्पत्ति के निर्वासित जीवन की घायल छटपटाती संवेदना को उकेरना कथाकार का मूल उद्देश्य है।

कहानी कथ्य और शिल्प में बेजोड़ है, भाषा सहज सरल तथा भाव सम्प्रेषण के अनुकूल है। कहानी का अंत करूणायुक्त एवं दुखांत है।

****

झुलसाती लू के साथ दुहरे होते युक्लिप्ट्स और केजुरीना के पेड़, दरकती, गुलाब की क्यारियाँ और सूखे पत्तों से ढका लॉन.... इस मौसम में वैसे भी मन एक अजीब–सी ऊब, बल्कि मनहूसियत से भर जाता है। कमरे से बरामदा, बरामदे से खिड़की और खिड़की से आती वही सूखी हरहराती हवा ''उन्होंने खिड़की का शीशा बन्द कर दिया, परदे खिसका दिये, फिर थोड़ी देर शीशे से टिकी खड़ी रही'' सब कुछ उजाड़, वीरान। माहौल की मनहूसियत से उदासी और भी गहरा गयी। और ऐसी दोपहर एक दो हो तो काटी भी जा सकती है, पर हफ्तों, महीनों, सालों.....

बहुत पहले भी जेठ–बैसाख की दुपहरी तो ऐसी ही उजाड़ हुआ करती थी, पर तब इतनी उदास और सपाट कभी नहीं लगी, या यों कहे कि इतना वक्त ही किसे रहता था! बच्चे छोटे थे, सारा समय उनके पीछे–पीछे ही भाग–दौड़ चीख–पुकार में बीत जाता। पलकें दो घड़ी झपक लेने को तरस जाती। बच्चों को सुलाने के लिये 'ढ़ाका, बंगाला कौआ' की कहानी कहते–कहते वह खुद सो जाती और छोटा धीरू बडे भाई के इशारे पर सिर के नीचे पडी माँ की कोहनी खिसका कर दबे पाँव तपती दुपहरी में खिसक जाता। पता तब चलता, जब महरी उन्हें मड़ैया पर फालसे तोड़ते देख कर कान पकड़ कर उनके सामने हाजिर कर देती.....तब तक बेर बिसहने लगती। आँगन और बरामदे में पानी का छिड़काव, सुराही, झंझर भरना और बाबूजी के लिये सौंफ, कालीमिर्च की ठंडाई पीसना.....

वह पोथी निकाल कर चश्मा टटोलने लगी। एक–दो पाठ गुनगुनाये, थोड़ी देर बीती, उठी, लू के थपेड़ों में ही अलगनी पर सूखती अपनी साड़ी और जंपर उठा लायी, उन्हें धीमे–धीमे तह करती रही। तह करके रैक पर रख दिया। अब\ बटुए से माला निकाली और चुपचाप बिस्तर पर बैठी फेरती रही। बैठे–बैठे कमर दुखती–सी लगी, तो लेट गयी, जाने कब झपकी सी आ गयी। थोड़ी देर में ही चौंक कर आँखें खुल गयी। लगा, काफी दुपहरी कट चुकी होगी। चार तो जरूर बजते होंगे। उठना चाहिए। बेटे–बहू के कमरे के दरवाजे उढ़के हुए थे। कूलर की घर–र–र सारे घर की खामोशी को मथ रही थी। दबे पाँव बैठक की ओर आयी। आरामकुर्सी पर उठंगे–उठंगे वह सो रहे थे। एक किताब हाथों के सहारे पेट पर टिकी थी, चश्मा थोड़ा नाक के नीचे खिसक आया था। उन्होंने चुपचाप किताब मेज पर रख दी, चश्मा उतारने लगी कि उनकी नींद खुल गयी–तुम सोयी नहीं क्या\

–नहीं, थोड़ी झपकी आ गयी थी, लेकिन गर्मी बहुत है, नींद खुल गयी। थोड़ा ठहर कर पूछा–जगा दिया तुम्हें।

—नहीं, मैं भी पढ़ते—पढ़ते यों ही झपक गया था। सचमुच बडी गर्मी है।

—शरबत लाऊँ बना कर, पियोगे?

—शरबत! नहीं, नहीं.....अच्छा ऐसा करो। चाय बना दो। तब तक राजेन और बहू भी जग जायेंगे।

वह दबे पांव ही रसोई में गयी। स्टोव में तेल नहीं था। बोतल से डालने लगीं, तो जाने कैसे बोतल फिसल गयी। चारों ओर मिट्टी का तेल फैल गया। आवाज सुनकर 'कौन है?कहती रीमा रसोई तक चली आयी। वह अपराधिनी—सी दयनीय बनी जल्दी—जल्दी कपड़े से सुखा रही थी।

—ओह! माँजी, आप?

उन्होंने खिसियानी—सी हँसी हँसते हुए कहा—मन में आया, जरा चाय बना दूँ''तुम्हारे बाबूजी भी जग गये थे। सोचा, जब तक बनेगी, तुम दोनों भी जग जाओगे तब तक......

—ओह, इतनी दोपहर में चाय कौन पियेगा! जरा शाम तो होने देती। फिर जमना आकर बनाता ही है, आप बेकार ही तकलीफ करने लगती है न!

—चार से ऊपर हो रहे थे, मन भी उचाट था। वह स्वर को धीमा करते हुए बोली।

—खूब! तो आप चाय बनाने लगी.......! उसने केवल हँस कर कहा था, वह भी बुरा लगने लायक कोई शब्द नहीं, पर उनका मन रोने—रोने—सा होने लगा।

कमरे में राजेन शायद पूछ रहा है। बहू फिक्क—से हँसती हुई उन्हें बता रही है— माँजी है! जाने इतनी दोपहर में उन्हें चाय बनाने की क्या सूझी...... और बुढ़ापे में हाथ तो चलता नहीं, बोतल लुढ़क गयी मिट्टी के तेल की.....!

—तो उन्हें समझा दो और अगर चाय जल्दी पीना चाहती हो, तो जमना को कह दो, जल्दी आ जाया करें।

—लो, तुम समझते हो, मैं उन्हें किचेन में काम करने को कहती हूँ! उनके जाने से तो काम बढ़ जाता है, पर ये बूढ़े लोग''

बूढ़े लोग! उनकी आँखें भरभरा आयी। अभी तो यहाँ आने के पहले तक सारा काम ही सम्भालती थी'' ''बाबूजी का नाश्ता, खाना, कपड़े धोना तक, और बाबूजी ने कभी शिकायत नहीं की कि अब तुमसे काम ठीक नहीं होता। दाल—सब्जी में भी न कभी पानी ज्यादा न नमक कम, जमना की तरह। सोचा, चलकर बैठक में उन्हीं के पास बैठूं। चाय बनाने का उत्साह तो समाप्त हो गया था। बैठक की ओर बढ़ी कि कानों में राजेन और बहू के खिलखिलाने की आवाज आयी। वह झेंप कर पूजा वाले कमरे की ओर बढ़ गयी। जाते—जाते राजेन का धीमा स्वर कानों में पड़ा—प्रेम—शेम कुछ नहीं, अकेली बोर फील करती होंगी, तो बाबूजी के पास जाकर बैठ जाती होंगी।

—वाह, जैसे मैंने देखा न हो! माँजी के मना करने पर भी पिताजी अपने कपड़े खुद धो लेते हैं। चाय की खाली प्याली उनके माँगने पर भी किचेन में रख आते हैं। दिन में अधिक नहीं तो चार—पाँच बार दवा के लिये पूछते हैं—खायी कि नहीं? खतम हो गयी हो, तो ले आऊँ, उनका बस चले, तो''

बात एक भरपूर कटाक्ष पर समाप्त हो गयी।

चाय की खाली प्याली रख कर वह चुपचाप सिर झुकाये बैठक की ओर मुड़ गये। सोचा, जमना से माँजी के बारे में पूछें फिर रूक गये, लौट कर उसी मुद्रा में झुके हुए अखबार लेकर बैठ गये। इतना अखबार उन्होंने जीवन में कभी नहीं पढ़ा था जितना पिछले ढ़ाई सालों में। रिटायर होने के डेढ़ साल बाद ही यहाँ आ गये थे दोनों डेढ़ वर्षों तक सौ रूपये महीने भेजने के बाद अचानक राजेन का पत्र मिला था, उसमें उसने अकेले उतनी दूर रहते माँ–बाबूजी को अपने पास रहने के लिये बुलाया था, मकान को किराये पर उठा देने की बात भी लिखी थी, वैसे किराये वाली बात गौण थी, मुख्य तो यही थी कि मां को अकेले सारा काम करना पड़ता हैं, यहाँ हम लोगों को चिन्ता बनी रहती है, इतनी दूर से समय कुसमय पहुँचना भी मुश्किल रहता है, सरकारी नौकरी ठहरी.....

अड़ोस–पड़ोस वालों ने भी कहा–ठीक ही लिखा है, अब यह उम्र आराम की है। यहाँ तो सौदा–सुलुफ और जो कुछ थोड़ा बहुत राशन लगता है, बाबूजी खुद ही लाते हैं। वहाँ तो बेटा इतना बड़ा अफसर है, हर काम के लिये चपरासी, अरदली हाथ बांधे खड़े रहेंगे। बहू भी सुशील है। इतनी बार यहाँ आयी, कभी ऊँचे बोल नहीं सुने। राज करोगी, राजेन की माँ! अफसरों की पुलाव–कचौडी से नीचे बात ही नहीं होती! और फिर सबसे बडी बात कि उसे इतना ख्याल है, नहीं तो आजकल के बेटे।

लेकिन मुँहफट बूढ़ी दरोगानी ने कहा था–सब कचौड़ी–पकौड़ा एक तरफ और अपना सुराज एक तरफ! वहाँ तो अफसरी कायदे से रहना होगा। लेकिन हाँ, आराम तो होगा ही, और फिर बुलाने पर न जाना भी।

इन दोनों ने खुद भी साथ–साथ और अलग–अलग बहुत कुछ सोचा था, घर छोड़ने की बात से दोनों के मन में एक–सी हूक उठी थी, पर तर्क सभी अकाट्य थे, सचमुच बहू का स्वभाव परखा हुआ है और फिर परतंत्रता कैसी?

हिचक कैसी?अपनी ही कोख में जनमी औलाद है, उन्हें तो चार बात भी कह दें, तो जबान नहीं खोल सकते हैं। लाख अफसर हों, माँ–बाप के सामने बच्चे ही हैं।

–रिजर्वेशन हो गया। आँगन में आकर बोले थे, तो जैसे किसी ने कलेजे पर हथौड़ा मारा हो। सामान बँधने लगे, चीजे बँटने लगी, सिल–बट्टे, सूप–चलनी, अलगनी, अलमारियाँ, कद्दू–कस, जन्माष्टमी पर बजने वाले घंटा–घड़ियाल, कृष्ण–जन्म के झूले, रामनवमी पर पूजा जाने वाला तुलसी का चौरा'''........ कुछ नहीं ले जाना है। राजेन ने लिखा है–अम्मा से कहिए, सब कुछ न उठा लायें, यहां उन्हें किसी बात की तकलीफ न होगी। सचमुच छोड़ दिया सब कुछ। रामेश्वरम् से लाया, तीर्थ का तांबे का लोटा भर धीमें से रख लिया, घंटा–घड़ियाल और कन्हैयाजी का पालना, बस............ बाबूजी ने भी देख कर मना नहीं किया। आखिर उनका भी तो कितना कुछ जुड़ा था इस लोटे और पालने के साथ। कैसे वे दोनों साथ–साथ नहाये थे और भगवान के सामने हाथ जोड़ कर, जो कुछ उसने भरापूरा दिया था, उसके लिये गद्गद् स्वर में कृतज्ञता अर्पित की थी। रामेश्वरम् जाने के दो महीने पहले ही छोटे रनधीर की नौकरी लगी थी।

स्टेशन पर राजेन खुद ही आया था, दो चपरासियों के साथ। प्लेटफार्म पर फैले थैले, बंडलों, गठरियों को देखकर एक बार तो खीझा, फिर परेशान–सा संयत स्वर में बोला– आपको तो मना किया था बाबूजी अम्मा को तो समझ नहीं, पर आप तो मना कर सकते थे। सौ बरस पुरानी सड़ी–गली चीजों का

भला क्या होगा यहाँ!

वह झेंप कर हँसे थे–अरे भाई, क्या बताऊँ! इन औरतों को तो तुम जानते हो ही, इतना मना किया, पर अब समझा तक ही तो सकता हूँ। खैर, एक तरफ कहीं रख दी जायेगी, हें–हें–हें।

चपरासी ने उनका कमरा बताया। पर सामान खुलने लगा तो बहू ने दाँतों तले उंगली दबा ली–ओह माँजी, नौकर देखेंगे, तो क्या कहेंगे! इसके पहले यहाँ जितने साहब आये, सब अंग्रेज या ऐंग्लो–इंडियन थे। वह हकबकी टुकुर–टुकुर देखती रही। रीमा, जल्दी से रामेश्वरम् वाला लौटा छुपा आयी। वह उसे मना न कर पायी।

भाई वाह, माँजी तो चलता–फिरता म्यूजियम साथ लायी हैं! रीमा ने हँस कर फिकरा कसा।

पूरी–की–पूरी गठरियाँ टाँड पर चढ़ा दी गयी, सो भी स्टोर वाले पर कि कोई उतार भी न सके। दो–एक बार उनके बारे मे पूछ कर वह चुप हो गयी थी। तभी उन्हें लगा था, जान–बूझ कर उन्होंने घर पर जितना कुछ छोड़ा था। अनजाने उससे कहीं ज्यादा छूट गया है, जो जीवन भर शायद न मिल सकेगा।

बाबूजी शायद ज्यादा साहसी थे, अड़ोस–पड़ोस में मन रमाने की कोशिश करते, सुबह–सुबह छड़ी लेकर घूमने निकल जाते। समय मिलता, तो माँजी को बुलंद आवाज में बुलाते–क्या कर रही हो ? अब यहाँ तुम्हें कौनसे काम का बहाना हैं, चलो पाठ किया जाये।

एकाध बार शुरू में उन्होंने राजेन को भी अधिकार भरे स्वर में बुलाने की कोशिश की, पर राजेन ने एक अजीब बड़प्पन भरी हँसी हँस कर टाल दिया–आप कीजिए, मुझे तो अभी देखिए मीटिंग में जाना है, फिर मेरे लिए बहुत समय पड़ा है पाठ–पूजा के लिए।

एक दिन बहू ने बडे मीठे ढ़ंग से आकर समझाया–माँजी, जरा बाबूजी से कहिएगा, इतनी जोर से पाठ न किया करें। वहाँ घर की बात और थी, यहॉं सब आफिसर्स ही रहते हैं, और फिर भगवान तो सब जगह है, देखिए न, कबीरदासजी ने भी कहा है–ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय। आप और बाबूजी मन–मन में पूजा कर लिया कीजिए, ये गुस्सा होते हैं।

वह बहू के दर्शन–ज्ञान और अकाट्य तर्क के सामन निरूत्तर थी। पूरी आज्ञाकारिता के साथ उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि भविष्य में वे दोनों इसका ध्यान रखेंगे। अकेले में स्वयं को भी समझाया, ठीक तो कहती है, इन लोगों को तो कोई उज्र नहीं, पर आने–जाने वाले जरूर हँसते होंगे। कहा भी है, जैसा देश, वैसा भेस। मन और भी हलका हो गया, जब देखा, राजेन पिताजी के साथ लॉन में चाय पी रहा है और घर–जायदाद वगैरह के बारे में सलाह ले रहा है।

चाय खत्म कर उठते–उठते राजेन ने जरा झिझकते हुए नपे–तुले स्वर में कहा–बाबूजी, शाम को मेरे दोस्त वगैरह आते हैं न, तो प्लीज आप अन्दर आ जाया कीजिए। असल में उन्हें ड्रिंक्स वगैरा चाहिए होती है, स्मोक भी करना चाहते हैं। आप बुजुर्ग ठहरे, आपके सामने झिझकते हैं! और जल्दी–जल्दी उनके चेहरे पर आयी प्रतिक्रिया देखे बिना जमना को आवाज दी–कार साफ करो। फौरन, बाहर जाना है।

–माँजी, हम बाहर जा रहे हैं। जमना बेबी को घुमा कर लौटे, तो दूध दिलवा देंगी। बस, खाना हम बाहर ही खायेंगे।

कार सर्र–से जा चुकी थी। थोड़ी देर वह उड़ती धूल को देखती रही, फिर एकदम अपने में लौट आयी। बाबूजी उसी तरह लॉन में सिर झुकाये बैठे थे।

–वे लोग तो बाहर गये, सुनने पर भी चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। गोद में पड़ी किताब उलटते–पलटते रहे।

–कौनसी किताब है.......पोथी है?

–नहीं रामतीर्थ–ग्रन्थावली।

किसी सुनसान घाटी में जैसे कोई अस्फुट ध्वनि गूँजी हो और उसके रेशे–रेशे चारों तरफ बिखर गये हों, ऐसे ही उन दिनों के अहसासों में एक साथ कुछ बिखरा हुआ था, थोड़ी देर चुप रही, फिर एकदम सहज होते हुए बोली–क्या बनाऊँ.......कटहल बनाती हूँ आज, तुम्हें बहुत पसन्द है।

–न, न, अब पचता नहीं।

–तो?बस खीर और सादी सब्जी?

खीर?नहीं जब बहू और राजेन रहें, तब बनाना।

शब्द थोड़े–से थे, पर अर्थ गहरे और विस्तृत। वह चुप हो गयी। घर पर थे, तो हर चौथे–पाँचवें हाथ की बनी मोटी रोटियाँ और आलू–बैंगन की सब्जी, बहुत खुश होते तो मखाने की खीर, बाद में दो रोटियाँ अपने लिए भी उलट उसी थाली में बैठ जाती। तब तक वह हाथ धो रहे होते।

शाम वैसी ही गुमसुमी–सी बीती, अँधेरा होने पर मन में घुमड़ता कुछ और भी गहरा आया। एकाएक उनके पास जा कर खड़ी हो गयी और अटकती आवाज में कह गयीं–सालों हो गये, एक बार घर चलते न!

–घर! उनकी आँखों में एक चमक आयी और बुझ गयी–वह तो पूरा किराये पर उठा दिया है! क्यों?क्या बात है?

–बात?बात कुछ नहीं, बहुत दिनों से घर छूटा ही है, बस?

–लेकिन कुछ दिनों को चलने से फायदा......?

–हाँ, एक गहरी उसाँस उस खामोशी में उतरती चली गयी–क्या फायदा...... ।

सुबह–सुबह ही रनधीर के आने का तार मिला था। दस बजे राजेन उसे स्टेशन से लेकर लौटा। पैर छूने के लिए माँ के घुटने तक हाथ जरा झुका कर हँसते हुए बोला–अच्छी तो हो, अम्मा! चलो भैया की सरकारी नौकरी में हुकुम चलाने का उनका काफी भार तुमने हलका कर दिया होगा।

वह जोर से हो–हो करके हँसते हुए बताने लगे–अरे, पूछो मत! दिन भर लोगों की भीड़ घेरे रहती है। साहब–साहब कहते जबान सूखती है। उनके सामने तो जमना और चपरासियों तक की अकड़ देखने लायक होती है। एक तो आजकल छुट्टी गया है, फिर भी दो–चार दिन भर ......वह उत्साह में भरकर बोले जा रहे थे।

राजेन सिगरेट की राख झाड़ते हुए भाई से कह रहा था–सब ऊपरी ठाट है, अन्दर ठाले रहते हैं।

अब तो असिस्टिंट भी पूरे घाघ मिलते हैं। कड़ी नजर रखते हैं कस्टमर्स पर। सरकारी नौकरी में तो बस छोटे ओहदों पर फायदा है। ऊपरी ठाट और अन्दरूनी हालत में कितना फर्क है, तुम सोच भी नहीं सकते। अब यही देखो। बेबी को कुछ सालों बाद नैनीताल कॉन्वेन्ट में डालना चाहता था, पर दम ही नहीं।

भोजन के बाद रनधीर जाने लगा, तो राजेन ने रोका–बैठो, बातें करेंगेः हम देर से ही सोते हैं। फिर थोड़ी देर रूक कर, उन दोनों को देखकर ठंडे लहजे में बोला– आप लोग भी चाहें तो बैठें, बाबूजी!

उन्होंने तुरंत उठते हुए कहा–नहीं, नहीं तुम सब बातें करो। आज काफी थकावट महसूस हो रही है। एक झूठी जम्हाई लेकर वह उठ आये, पीछे–पीछे वह भी आ गयी। दोनों को एक साथ लगा, शेष तीनों ने एक राहत–भरी मुक्ति महसूस की है।

बरामदे से चुपचाप गुजरते हुए वह सोच रही थी, नींद तो अभी घंटों नहीं आयेगी, तब तक क्या करेंगी?क्यों न बाबूजी को भी कमरे में ही बुला लें, थोडी देर बैठें, फिर चले जायेंगे। उन्हें मुड़ते देख कर टोका–अभी सोओगे?

–नहीं तो।

–तो बैठो न कमरे में ही।

–कमरे में? नहीं, चलता हूँ......रात काफी हो गयी है। थक भी गया हूँ। इस समय कमरे में बैठना ... . चलूँ, जरा अखबार आज ठीक से नहीं पढ़ा।

सब कुछ कहा–अनकहा, जाना–समझा था, फिर भी यह ऐसा प्रस्ताव रख गयी थी बाबूजी के सामने। अपनी गलती तुरंत समझ में आ गयी। बहू–बेटों के पास से थकान का बहाना करके आना और फिर घुल–घुल कर बतियाना...... ।

एक दिन बहू राजेन से खिलखिलाती कह रही थी–पिताजी तो माँजी को बिलकुल मॉडर्न बनाने पर तुल गये हैं! आज उन्हें शिमला–पैक्ट के फायदे–नुकसान समझा रहे थे!

–तो आपको क्या ऑब्जेक्शन है?राजेन ने मुसकरा कर पूछा।

–ऑब्जेक्शन? खी–खी–खी–खी! मुझे तो लगता है, सच जैसे थिएटर देख रही हूँ! अभी देखो, नाउ शी इज परफेक्टली ऑलराइट, लेकिन पिताजी को चैन कहाँ? जब भी मौका मिलेगा–कमजोरी लगती हो तो ताकत वाली दवा एकाध शीशी और ला दूँ.......घबराहट के लिए वह कौन–सी होमियोपैथी की दवा बतायी थी डाक्टर बैनर्जी ने? माँजी निहाल हो जाती है। फिर भौहों की कमान चढ़ाती राजेन से बोली–सच, तुमने अपने पिताजी से कुछ नहीं सीखा''''कुछ नहीं!

–शैतान की बच्ची........! राजेन एक प्यार–भरी चपत लगा कर मुसकरा पड़ा।

एक–दो दिन बाद डाक्टर के यहाँ जाते समय जब उन्होंने तबीयत का हाल पूछा, वह एकदम चिड़चिड़ा पड़ी उन पर। स्तब्ध–से अपलक देखते रहे उन्हें और चुपचाप चले गये। वह लेटी आँखों पर कुहनी रखे रोती रही...... आखिर उनका क्या कुसूर था, क्यों चिड़चिड़ाई उन पर!

काफी रात गये उनकी 'गुड नाइट' के शब्द कानों में पड़े। तब तक वे दोनों अलग–अलग पूरी तरह जगे हुए थे। बीच में माला जपते समय या रामतीर्थ–ग्रन्थावली पढ़ते समय एकाध झपकी आयी भी, तो उन

तीनों के ठहाकों और खिलखिलाहटों से उचट गयी।

सुबह उठने के साथ ही रनधीर ने हँसना और सबको हँसाना शुरू किया। यह उसकी बचपन की आदत थी। राजेन की तरह गम्भीर नहीं, हमेशा का चिबिल्ला था। इस समय भी कभी बेबी के हाथ से डॉल छीन कर उसे रूला रहा था। कभी बाबूजी का चश्मा लगा कर पढ़ने की कोशिश कर रहा था, कभी जब वह भाभी को छुप कर देखने गया था, उसके मनोरंजक प्रसंग सुना रहा था। कोई नहीं मिलता, तो जमना से ही उसकी शादी की बाबत जानकारी ले रहा था।

–जमना, सुन, तू हनीमून पर जरूर जाना। खर्च की सारी जिम्मेदारी मेरी।

–जमना झेंपता–शर्माता ट्रे उठाकर चला जाता। वह पूजा कर रही थीं, तब भी डाइनिंग–रूम से आते ठहाके उन्हें कुलबुला जाते, विशेषकर जब बेटों के साथ उनकी भी मुक्त हँसी मिली होती। पूजा करते हुए भी मन उन्हीं लोगों पर था। वह ज्यादा खुश और मुक्त लग रहे थे, बेटों की बातों में खूब रस ले रहे थे। राजेन और रनधीर के मुँह से कई बार 'बाबूजी' संबोधन सुन उनका मन पुलकित हो उठा था। हाथ की माला सालों पहले की परिक्रमा करने लगी थी, जब स्कूल से टीम जीत कर आने पर दोनों खेल की बातें बताते–बताते पिता को निहाल कर देते और वह प्रसन्नमन कहते–शाबास मेरे शेरों! फिर ठहाके थम गये। सब शान्त हो गया। राजेन ऑफिस चला गया। काफी देर बाद वह कमरे में आये, तो मुसकरा दी–आज तो बड़े दिन बाद बेटों से ठट्ठे करते सुना तुम्हें!

उन्होंने जैसे सुना न हो, ऐसे स्थिर दृष्टि से उन्हें देखा, फिर एक–एक शब्द पर रुकते हुए खिड़की के बाहर देखते कह गये–सुनो, मैं जा रहा हूँ...... छोटे के साथ।

–कब? एक अप्रत्याशित प्रतिक्रिया उभरी–कितने दिनों के लिए?

–कल। वहीं रहने के लिए, उसके साथ ....

भयाक्रान्त–सी वह एकदम से पूछ बैठी–क्यों?

लगा, यह सवाल एक बड़ी चट्टान की तरह उन दोनों पर भर–भरा कर गिर पड़ा हो और उनके समेत उनका सब कुछ चकनाचूर हो गया हो।

कठोर संयम से उन्होंने आवेगों की रास खींच ली–कुछ नहीं, यों ही............ काफी दिन तो हो गये यहाँ रहते। थोड़ा घूम–फिर आना चाहिए ....

–मुझे भी तो यहाँ रहते........! वह निरंतर असहाय–सी होती जा रही थी।

गले में बहुत कुछ गुटकते हुए धीमे–धीमे बोले–मैं आ जाऊँगा, तब तुम जाओगी।

फिर दोनों एकदम चुप, एक दूसरे को देखते रहे, जैसे आँखें पथरा कर किसी एक ही दिशा में टिक गयी हों। उन आँखों की अथाह कातरता में बस एक ही सवाल गहराता जा रहा था................ हमारा अपराध.. ....?

पहले वह ही सँभले–अब जब दो बेटे हैं, तो एक ही दोनों का खर्च उठाये, ठीक नहीं लगता न.......... ?है कि नहीं? ठीक ही सोचा दोनों ने, अभी यहाँ बेबी छोटी है, तुम यहाँ रहोगी। सात–आठ महीने बाद छोटी की डीलीवरी होगी........ फिर तुम वहाँ चली जाओगी छोटे के पास। मैं यहाँ........ तो चलूँ......... ऐं....... तुम जरा

मेरी कमीजें वगैरा....... ।

थोड़ी देर बाद वह अखबार लिये फिर सामने खड़े थे–यही कहने आया था कि मेरी छड़ी रखना मत भूलना, जो हम हरिद्वार से लाये थे। जरा टहल आऊँ न! बस.......यही कहना था..... ।

लेकिन वह कुछ कह नहीं सके थे। यूँ ही बस, कमरे के बीचों–बीच कुर्सी का सिरा पकड़े खड़े थे। काँपती उँगलियों में कस कर पकड़ा हुआ अखबार और आँखों में बाण–बिद्ध क्रौंच–युगल की मूक पीड़ा थी, जिसे देखकर किसी आदि कवि का कोमल हृदय करूणा की अथाह लहरियों में बह चला था।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमह शाश्वती महा..........

शब्दार्थ

मनहूसियत–अशुभ, बुरा, / माहौल–वातावरण, /मड़ैया–झौंपडी, कुटिया, /उढ़कना–भिड़ाना, किसी के सहारे टेकना, /उचाट–मन का न लगना, विरक्ति, /कुसमय–संकट का समय, बुरा समय, /अरदली–नौकर /सुराज–स्वराज, /उज्र–आपत्ति, ऐतराज, /कस्टमर–ग्राहक, स्तब्ध–जड़, स्थिर।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'निर्वासित' कहानी की कहानीकार है–

(क) दीपबाला (ख) वीरबाला

(ग) सूर्यबाला (घ) राजबाला ( )

2. 'निर्वासित' कहानी का अंत होता है–

(क) सुखांत (ख) दुखांत

(ग) प्रसादांत (घ) इनमें से कोई नहीं ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. माँ जी बच्चों को सुलाने के लिये कौनसी कहानी सुनाती थी?
2. 'निर्वासित' कहानी के प्रारम्भ की पंक्तियाँ कौनसे भावों को अभिव्यक्त करती हैं?
3. बाबूजी के दोनों बेटों के क्या नाम थे?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बड़े बेटे राजेन के पास जाने को लेकर पड़ोसियों ने क्या कहा?
2. पड़ोसियों की राय के विपरीत बूढी दरोगानी ने क्या विचार व्यक्त किये?
3. 'निर्वासित' कहानी में निहित कहानीकार का उद्देश्य क्या है?लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पठित कहानी के आधार पर 'निर्वासित कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'निर्वासित कहानी के कथा शिल्प पर अपने विचार लिखिए।
3. वर्तमान सन्दर्भों में 'निर्वासित' कहानी की प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।
4. अपनों के मध्य वानप्रस्थ जीवन जीने वाले दम्पत्ति की पीड़ा, संत्रास तथा घुटन की करूण कहानी है 'निर्वासित'। पठित कहानी के आधार पर उक्त कथन को समझाइये।

हमारी पुण्य भूमि और इसका गौरव मय अतीत
(स्वामी विवकानंद के भाषण का अंश)

संकलित–एकनाथ रानाडे

लेखक–परिचय

भारत भूमि के पाद–प्रदेश में स्थित कन्याकुमारी का अभिषेक करती सागर त्रय की उतुंगलहरों के बीच साकार स्वामी विवेकानंद शिला–स्मारक विश्व–मानस को ज्ञान भक्ति, वैराग्य तथा प्राणी–सेवा का पावन संदेश वर्षों से प्रसारित कर रहा है। शिला स्मारक का स्मरण आते ही एक मनस्वी, सेवा–समर्पण की प्रतिमूर्ति तथा मूक व्यक्तित्व श्री एकनाथ रानाडे का नाम हमारी स्मृति में उभर आता है, जो स्वामी विवेकानन्द शिला स्मारक के सूत्रधार तथा शिल्पी रहे।

एकनाथ रानाडे का जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के टिटोली ग्राम में हुआ था। ग्रामीण पृष्ठ भूमि के कारण शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने से एकनाथ अपने अग्रज के पास अध्ययन के लिए नागपुर आ गये। यहाँ से माध्यमिक शिक्षा परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ संगठनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त हुए। सन् 1936 में शिक्षा पूर्ण करके संगठन कार्य हेतु प्रवासी कार्यकर्ता बनकर मध्यप्रदेश में रहे, इसी अवधि में डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय (सागर विश्वविद्यालय) से तत्त्वज्ञान विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करते हुये समाज और राष्ट्र की सेवार्थ जीवन के अंतिम क्षणों तक स्वयं को समर्पित रखा।

एकनाथ रानाडे कुशल संगठनकर्त्ता, प्रभावीवक्ता, योजनाकार, सत्याग्रही तथा स्वामी विवेकानंद शिला स्मारक के योजनाकार वास्तुविद् एवं निर्माता के रूप में जनमानस के केन्द्र में रहे हैं। आपके द्वारा स्वामी विवेकानंद के शिकागो प्रवास के भाषणों, प्रवचनों का संकलन 'उत्तिष्ठत! जाग्रत!!' में किया गया है, जिसके कई संस्करण भारतीय जनता के मन में अपना स्थान बना चुके हैं।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत भाषण का अंश हमारी पुण्यभूमि और उसका गौरवमय अतीत एकनाथ रानाडे द्वारा संकलित तथा देवेन्द्र स्वरूप अग्रवाल द्वारा अनुवादित उत्तिष्ठत! जाग्रत!! में से लिया गया है। जिसमें पुण्यभूमि भारत का गौरवमय अतीत, आर्य जाति की अवधारणा, उसकी विश्लेषणात्मक मेधा तथा उसकी कालजयी अमृत संतानों का सौम्य परिचय दिया गया है। इस पुण्य भूमि ने सृष्टि की प्राचीनता से अर्वाचीनता के विराट कालखण्ड में ज्ञान, विज्ञान भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में जो योगदान दिया है, वह विश्वमानवता के लिये अनुकरणीय है। पश्चिमी विचारों को जीती परमुखापेक्षिता तथा हीनता बोध से ग्रस्त भारतीय युवा पीढी के लिये सद्मार्ग तथा नवीन आत्मबोध की प्रेरणा देंगी। स्वामी जी के भाषण की भाषा काव्यमयी ओजयुक्त, प्रभावी, भावों की गंभीरता लिये गहन चिंतनयुक्त है।

यदि इस पृथ्वीतल पर कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा